[ब्र]जवासीलाल श्रीवास्तव

विनय-पत्रिका की भूमिका

(गोस्वामी तुलसीदासजी के शब्दों में प्रस्तुत एक भावपूर्ण रचना)

—❀—

श्री रामचरित मानस के सम्बन्ध में कुछ निवेदन करने की आवश्यकता मैंने अनुभव नहीं की थी। आवश्यकता थी भी नहीं। भगवान् राम का चरित प्रस्तुत करना था जो भक्तों एवं पाठकों को स्वयं ही प्रकट था। मैं तो निमित्त मात्र था, जो भगवान् ने चाहा, मुझसे लिखा लिया, वह तो भगवान् की अपनी कृति और अपनी अभिव्यक्ति थी। वह शब्द-चित्रों में साकार होना चाहते थे, तूलिका मेरे हाथ में थमा दी गई थी। उनकी प्रेरणा से हाथ चल रहा था। जहाँ कहीं यह भाव आया कि मेरे हाथ में तूलिका है, वहीं दोष आ गये होंगे, जिनके लिए मैंने अवश्य क्षमायाचना की है।❀

मानस राम की कथा है तो विनयपत्रिका मेरी अपनी कथा है। इसके सम्बन्ध में दूसरा कोई कैसे उत्तरदायी हो सकता है? मैं लिख रहा हूं और अपनी बात लिख रहा हूं, अपनी बीती लिख रहा हूं, मेरा अन्तःकरण मुझे लिखने के लिए विवश कर रहा है, इसलिए इस कृति का सारा दायित्व मेरा है। मुझसे पूछा जा सकता है कि इसको क्यों लिखा? इसका क्या अभीष्ट है?

❀ कवि न होउँ नहिं वचन प्रबीनू, सकल कला सब विद्या हीनू ॥
(मा १-८-८)

कवित, विवेक एक नहिं मोरे सत्य कहउँ लिखि कागद कोरे ॥
(मा१-८-११)

ब्रजवासीलाल श्रीवास्तव

विनय-पत्रिका की भूमिका

(गोस्वामी तुलसीदासजी के शब्दों में प्रस्तुत एक भावपूर्ण रचना)

—❀—

श्री रामचरित मानस के सम्बन्ध में कुछ निवेदन करने की आवश्यकता मैंने अनुभव नहीं की थी। आवश्यकता थी भी नहीं। भगवान् राम का चरित प्रस्तुत करना था जो भक्तों एवं पाठकों को स्वयं ही प्रकट था। मैं तो निमित्त मात्र था, जो भगवान् ने चाहा, मुझसे लिखा लिया, वह तो भगवान् की अपनी कृति और अपनी अभिव्यक्ति थी। वह शब्द-चित्रों में साकार होना चाहते थे, तूलिका मेरे हाथ में थमा दी गई थी। उनकी प्रेरणा से हाथ चल रहा था। जहाँ कहीं यह भाव आया कि मेरे हाथ में तूलिका है, वहीं दोष आ गये होंगे, जिनके लिए मैंने अवश्य क्षमायाचना की है।❀

मानस राम की कथा है तो विनयपत्रिका मेरी अपनी कथा है। इसके सम्बन्ध में दूसरा कोई कैसे उत्तरदायी हो सकता है? मैं लिख रहा हूं और अपनी बात लिख रहा हूं, अपनी बीती लिख रहा हूं, मेरा अन्तःकरण मुझे लिखने के लिए विवश कर रहा है, इसलिए इस कृति का सारा दायित्व मेरा है। मुझसे पूछा जा सकता है कि इसको क्यों लिखा? इसका क्या अभीष्ट है?

❀ कवि न होउँ नहिं बचन प्रबीनू, सकल कला सब विद्या हीनू॥
(मा १-८-८)

कवित, विवेक एक नहिं मोरे सत्य कहउँ लिखि कागद कोरे॥
(मा१-८-११)

इसकी क्या उपयोगिता है ? आदि आदि। इसीलिये विनय-पत्रिका के सम्बन्ध में कुछ कहने की मुझे आवश्यकता हुई है।

प्रारंभ यहाँ भी मैंने "श्रीराम-गीतावली" से किया था। भगवान् राम के चरित को गीतों में प्रस्तुत करना चाहता था। आगे इसके साथ विनय के पद जोड़कर विनयपत्रिका बना देने की प्रेरणा बलवती सिद्ध हुई और विनय-पत्रिका बन गई।※

विनय की प्रेरणा - भूमि

यों बात सचमुच मानस-रचना के साथ ही प्रारम्भ हुई थी। मानसकार रचना के रूप में अपने राम से, अपने आराध्य से, अपने सर्वस्व से कितनी दूर रहा और रहना पड़ा कि मेरा हृदय कराह उठा। ऐसा अवसर निकाल पाना कठिन था कि मैं अपने राम को रोक लूँ और अपने हृदय की कह डालू। ऐसा लगता रहा कि मैं अपना सर्वस्व गवाँ बैठा हूं, रचनाकार के हाथों बिक गया हूं, मेरा अपना कोई अधिकार नहीं रहा है। हाँ, अपने राम से अपनी कहने का अधिकार अपने राम के चरणों में विकल होकर नतमस्तक होने का अधिकार, अपने राम को विह्वल होकर आलिंगन करने का अधिकार, दृश्य पर दृश्य ऐसे उपस्थित होते गये—कहीं भगवान् शिव मुग्ध हुए न्यौछावर हो रहे हैं, कहीं ग्राम-ग्राम का जनमानस उमड़ पड़ा है, सौन्दर्य का पान कर रहा है, कहीं नारदजी विकल होकर "गहे पाहि प्रनतारति हरनी" का शरणागति दृश्य उपस्थित कर रहे हैं, कहीं हनुमान, सुग्राव, अङ्गद सान्निद्ध

※ संवत् १६६६ वाली विनयपत्रिका। इसमें कुल १७४ पद हैं। इसका नाम "श्री रामगीतावली" है। संगीतकलाकुशल कवि ने समय-समय पर कुछ गीत के पद रचे हैं और फिर उनको एकत्र करके उस ग्रंथ का नाम "श्रीरामगीतावली" रख दिया। कुछ वर्षों के बाद किसी कारण से कुछ विनय के पद और लिखे। दोनों को किसी समय एकत्र कर उस पूरे ग्रंथ का नाम "विनय-पत्रिका" रखा और दरबार में पेश किया।

—विनय-पीयूष, प्रथम व द्वितीय हिलौर, १९४७, भूमिका

प्राप्त कर गद्गद् हो रहे हैं। एक नहीं अनेक ऐसे प्रेरणाप्रद दृश्य आते रहे और मन मुझे कचोटता रहा। तू कविता ही करता रहना। बस, कवि बन कर ही रह जायगा। भगवान् का यह सान्निद्ध कहाँ मिलेगा? छोड़ यह सब।

एक दृश्य की ओर आपका ध्यान आकृष्ट करूँ। भगवान् राम वनवास के लिए निकल पड़े हैं। सर्वत्र बात फैल गई है कि सुन्दर राजकुमार, फूल-सी कोमल राजकुमारी के साथ वनवास के लिए निकल पड़े हैं। जिन गाँवों एवं नगरों के पास होकर वह निकलते हैं, वहाँ का सारा जन-मानस दौड़ पड़ता है। एक कोलाहल-सा मच जाता है कि देखें कौन आगे पहुँचता है और उन परम पावन अतिथियों के मनभावन दर्शन कर कृतार्थ होता है। आबाल-वृद्ध सभी नगर-गाँव छोड़कर मार्ग की ओर दौड़ रहे हैं। घर पर कोई रहना नहीं चाहता। मत्रमुग्ध-से-खिचे चले जा रहे हैं। जब इनको यह पता चलता है कि ऐसे सुन्दर और सुशील राजकुमारों और 'अबोध-बाला जैसी कोमल राजकुमारी को वनवास दिया गया है, तो सबके हृदय भर आते हैं। कोई भाग्य को कोसता है, कोई राजा-रानी को दोष देता है। बड़ा करुण दृश्य है। छोटे-बड़े सबके जी भर आये हैं। अश्रु बह रहे हैं। मुख से कुछ कहते नहीं बनता। मौन, थके, छुटे-से प्रस्तर प्रतिमा बने रह गये हैं। वायु रुक-सी गई है, साँसे रुँध गई हैं। न तो यह मर्मस्पर्शी दृश्य देखते बनता है, न वहाँ से हटते बनता हैं। करुणा का सागर उमड़ पड़ा है और जन-मानस बहा चला जा रहा है।

जमुना के दक्षिणी तट का यह वही राजापुर के समीप का स्थान है, जहां मैं कथा लिख रहा हूं। इसलिये इस स्थान पर भगवान् का आगमन मेरे लिये विशेषरूप से मर्मस्पर्शी बन जाता है। मन विकल हो उठता है। हम भी आज कहीं त्रेतायुग में जन्मे होते तो सब कुछ छोड़कर हम भी अपने आराध्य के साथ हो लिए होते। उनका सान्निध्य प्राप्त करते, क्षण-क्षण उनके दर्शन करते, "श्रीवल्लभ नखचंद्र छटा" का पान करते, चरणरज में लोटते, सेवासमर्पित रामकाज

के लिये उत्सुक एवं उन्मुख होते। युगों की दूरी पारकर हमें ऐसा लगने लगा कि भगवान् राम उस मार्ग से आ रहे हैं। हम अपने कर्म में व्यस्त हैं। मन विह्वल हो उठा है। हमें धिक्कार रहा है। हमारे आराध्य उधर होकर निकलें और हम अप्रकट बने रहें। कवि-कर्म के आवरण में मन मसोस कर रह जाय, सामान्य शिष्टाचार के नाते अपनी श्रद्धा-निवेदन का अवसर भी हाथ से निकल जाने दें, यह कैसे हो सकता है। जिसकी कथा लिख रहे हैं, वहीं स्वय साक्षात् प्रकट हों तो फिर और क्या चाहिये। एक तापस के वेश में मैं भी भीड़ में कूद पड़ा और झटपट प्रभु के समीप पहुँचकर भगवान् राम, माता सीता तथा प्रभु लक्ष्मण के चरण स्पर्श कर बैठा। फिर भी यह अवसर ही ऐसा था कि कोई कुछ कह ही नहीं पा रहा था। मैं भी चुप-चाप आगे बढ़कर भीड़ में गायब हो गया।१ इस सारे प्रकरण को कोई ६ अर्द्धालियों में अंकित कर गया। मैं तो ऐसा हड़बड़ा गया था कि जिस अर्द्धाली को लिख चुका था-'ते पितु मातु कहहु सखि कैसे। जिन्ह पठए वन बालक ऐसे। (१.८८.२) इस प्रसंग के पश्चात् पुनः उसी को लिखा गया—"ते पितु मातु कहहु सखि कैसे...१.११०-७ अब आप अनुमान लगा सकते हैं कि हमारी कैसी करुण दशा रही होगी। हमारे आराध्य साक्षात्

१—तुलसी रही हैं ठाढ़ी, पाहन गढ़ा सी-काढ़ी,
कौन जाने कहाँ ते आई, कौन की, को ही।

२—तेहि अवसर एक तापसु आवा।
तेजपुंज लघुवयस सुहावा।
कवि अलखित गति बेषु बिरागी।
मनक्रमबचन राम अनुरागी। २.१०९,७.८
सजल नयन तन पुलकि निज इष्टदेउ पहिचानि।
परेउ दण्ड जिमि धरनितल दसा न जाइ बखानि। २.११०
राम सप्रेम पुलकि उर लावा, परम रंक जनु पारसु पावा।
मनहुँ प्रेमु परमारथु दोऊ, मिलत धरे तन कह सबु कोऊ।
[मा २.११०—७-८]

प्रकट हों और हम चोरी-चोरी चरण-स्पर्श कर गायब हो जायँ, उनसे अपनी कहने का अवसर ही न मिले। मन की मन में रह जाय। कहा तो यह था कि वह मिल जायँ तो चरण पकड़-कर अड़ जायेंगे और अपनी सारी रामकहानी कहकर ही उन्हें आगे बढ़ने देंगे और कहाँ यह मन मार कर रह जाने का कचोटनेवाला अवसर ! सब कुछ सहने के लिये ही हमारा भाग्य हमारे अन्तस की पीड़ा और हमारे मन की घुटन बन गया। हमारा मन भटकता रहा और बार-बार आराध्य की छवि में अटकता रहा। यही विवशता हमारी विनय बन गई और विनय-पत्रिका का रूप धारण करने लगी।

हम अपनी बात आपसे कह रहे थे। भगवान् शकर की बात भी तो कुछ ऐसी है। इसको आप ईर्ष्या नहीं कहें। यह तो मन की ललक है, कोमल कामना है। जब यह देखते हैं कि परम पिता परमात्मा किसी के सिर पर हाथ रख रहे हैं, किसी को अपने हृदय से लगा रहे हैं तो हमारा और आपका ही नहीं, मानव-मात्र का मन ललक उठता है। मन में एक प्यास उठती-सी लगने लगती है, एक तड़पन हृदय को झकझोर डालती है और शरीर का रोम-रोम पुलकित होकर स्वप्न देखने लगता है कि ऐसा सौभाग्य कभी हमें भी मिलेगा। मीठी-मीठी कल्पनायें उठती हैं और मन-मोदक बनने लगते हैं। ऐसी व्यथा में मानस की वेदना विनय की अश्रुधारा प्रवाहित करती है। बार-बार यही ध्यान आता है कि हम हीं दोषी हैं। हम इस योग्य ही कहाँ हुए कि हमारे राम हमको अपने हृदय से लगावें, हमारे सिर पर हाथ रखें।

भगवान् शंकर रामकथा सुना रहे हैं। साध्वी पार्वती जी कथा सुन रही हैं और कथा के श्रवण में दत्तचित्त और तन्मय हैं। तभी भगवान् शंकर कथा कहते-कहते यकायक रुक जाते हैं। किंचित् सावधान होते हैं और फिर कथा प्रारम्भ करते हैं। उनका मन भी विचलित हो गया, जब उन्होंने देखा :—

प्रभु कर पकज कवि के सीसा।
सुमिरि सो दसा मगन गौरीसा॥
सावधान मन करि पुनि संकर।
लागे कहन कथा अति सुन्दर॥
(मा ५. ३२-२, ३)

यह जीवन जिसने दिया, यदि उसके काम आ जाय तो इससे अधिक इसकी सार्थकता क्या हो सकती है। यह हो कैसे ? हम तो अपने ही धन्धे में ऐसे लगे रहते हैं कि किसी दूसरे का भला करने की बात आ ही कहाँ पाती है ? फुरसत ही नहीं मिलती। अपनी छोटी-सी दुनिया में खोये-खोये हम तो अपने राम को ही खो देते हैं। किन्तु हमारे अनन्य सखा एवं आराध्य हनुमान का चरित्र ही निराला था। उसका सारा जीवन राम काज के लिए अर्पित था। "राम काज* कीन्हें बिना" उसे विश्राम कहाँ, उसे चैन कहाँ ? उसे हमारी तरह फुरसत न मिलने की शिकायत थोड़े ही थी। उसे तो फुरसत ही फुरसत थी। वह तो इसी ताक में रहता था कि भगवान् के किसी काम आ सकूँ। और उसकी साध सदा पूरी होती रही। उसको भगवान् के काम मिलते रहे। कैसी सुन्दर गति है। कैसा सुन्दर योग है। अपना कोई काम नहीं। जो कुछ सो सब भगवान् का काम। सारा जीवन उनको अर्पित, उनके चरणों में समर्पित। उनके काम के लिये प्राणपण की बाजी और सर्वस्व न्यौछावर। हम तो अपने राम के गायक हैं। पूजापाठ तो समझते नहीं, लेकिन इतना अवश्य समझते हैं कि इससे बढ़कर कोई ईश्वर-पूजा हमारी दृष्टि में नहीं कि हमारा जीवन, हमारी दिन-चर्या अपने राम के काम करे, राम के कामों में लगी रहे। जो कुछ हम कार्य कर रहे हों, वह राम-काज हो और उसे करने के लिये हमारी अपार आतुरता हो। ऐसे अवसर दीजिये। तनिक देख तो लीजिये। एक बार ही परीक्षा कर लीजिये। हम भी आपके काम आ सकें, ऐसा कोई संयोग बनाइये। हम कोरे दर्शक कब तक बने रहेंगे, दीनानाथ! अपना पेट तो कूकर भी भर लेता है। हमारी क्या यही गति होना शेष है। क्या इसीलिए हमें आपने मनुष्य का जन्म दिया है ? हम कब समझ पावेंगे कि आप की क्या आज्ञा है। कब तक हम अपने मन की करते रहेंगे। हे अन्तरयामी क्या यह हमारा जीवन इसी प्रकार बीत जायगा ? आप देख रहे हैं। हम

---

*डा० बल्देव प्रसाद मिश्र इसको Rama's Cause कह कर विषय की व्यापकता की ओर ध्यान आकृष्ट किया करते है।

इधर से उधर भटकते फिरते हैं। यह नाराज न हो जाय, वह नाराज न हो जाय, यही देखते फिरते हैं और सब नाराज ही दिखलाई देते हैं। कभी हम यह सोच ही नहीं पाते कि हमारे राम तुम्हारे मन की क्या है, तुम किस में प्रसन्न हो, कहीं तुम नाराज न हो जाओ और परिणाम यह है कि घोर परितप्त यह जीवन आपसे ही नहीं, अपने आपसे भी दूर होता जा रहा है। ऐसा लगता है कि किसी भँवर में पड़ गये हैं और अपनी करनी पर अपना वश नहीं रहा है।

हमारे सखा का हाल ही विचित्र था। वह कथा सुनने आ जाया करता था। हम रामचरित मानस लिखते तो वह बड़ी आतुरता से देखा करता। हम कागज काला करते और उसे उन अक्षरों में राम के दर्शन होते। हम उससे थोड़ा अलग बैठने को कहते। उसके हाथ जो चलते रहते थे, इससे हमारे पोथी-पत्रा के टूटने फूटने का अंदेशा रहता। वह बेचारा सरक कर अलग बैठ जाता; किन्तु उसकी उत्सुकता और बढ़ जाती और वह उचक-उचक कर झाँकता। हम कथा सुनाते और वह मग्न होकर रामकथा सुनता। ऐसा लगता कि उसको कोई रसीला फल मिल गया है। उसकी दशा देखकर हम दंग रह जाते थे। उसकी लगन और निष्ठा काम आई। हमने उसको डर के मारे दूर बैठाया, लोग उससे दूर भागते रहे और वह इन दूरियों को भगवान् की निकटता में बदलता गया। एक दिन वह राजाराम और महारानी सीता का बेटा बन गया, लाड़ला बेटा जिसको वह हृदय लगायें, आशीर्वाद दें तथा सिर पर हाथ रखें। अब आप ही सोचिये, हम पर क्या बीत रही होगी। गुरु गुड़ ही रहे चेला शक्कर हो गये। हम कवि ही बने रह गये और वह हमारा सखा हमारा आराध्य बन गया। सीताजी और रामके द्वारा हनुमान को बेटा*कहकर सम्बोधित करने

*है सुत कपि सब तुम्हहिं समाना। जातुधान अतिभट बलवाना॥
सीता— सुनु माता साखामृग, नहि बल बुद्धि बिसाल।
प्रभु प्रताप तें गरुड़हि खाइ परम लघु ब्याल।
अजर अमर गुननिधि सुत होहू। करहुं बहुत रघुनायक छोहू।
(मा. ५.१६.३)

राम— सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं।
देखेउँ करि बिचार मनमाहीं। (मा.५.३१.)

पर हमारा कलुष, हमारा पाप हमें दिखलाई देने लगा। हम अपने आपको धिक्कारने लगे। मन में एक कसक-सी उठने लगी कि हे राम ! हमारा यह सौभाग्य न हुआ। हमने विनय का आश्रय लिया और गला फाड़-फाड़ कर पुकारा। अपना सुत होना सिद्ध किया, ॐ किन्तु वह बात ही कहाँ आ पाई जो हमारे प्यारे सखा हनुमान् को सुलभ हुई। धन्य है वह ! बधाई है उसे !! उसका-सा सौभाग्य सब का हो !!! यही हमारी विनय बन गई।

विभीषण और बालि को भी यह सौभाग्य मिला। × उनकी गति भी स्पृहणीय थी। उन दृश्यों को देखकर मन में अपने प्रति और भी ग्लानि हुई कि हम किसी रूप में भी ऐसी करनी न कर पाये कि भगवान भाव-कुभाव को न देखते हुए हमको भी अपने हृदय से लगा लेते, हमारे सिर पर भी हाथ रख देते, हमें भी अपनी शरण में लेते। ×

ॐश्रवन सुजसु सुनि आयउँ प्रभु भंजन भव भीर।
त्राहि-त्राहि आरति हरन सरन सुखद रघुबीर (मा. ५.४५)

अस कहि करत दंडवत देखा। तुरत उठे प्रभु हरष विसेषा।
दीन बचन सुनि प्रभु मन भावा। भुज बिसाल गहि हृदय लगावा ।।

(मा.४५.२)

ॐ कबहुँक अंब, अवसर पाइ।
मेरिऔ सुधि द्याइबी, कछु करुन-कथा चलाइ ।। ४१

विनय-पत्रिका दीन की, बापु ! आपु ही बाँचो। २७७

सुनत राम अति कोमल बानी। बालि सीस परसे उनिज पानी ।।

(मा. ४,६..१)

× कबहुं सो कर-सरोज रघुनायक। धरिहौ नाथ सीस मेरे। १३८

(क्रमशः)

डा० व्रजवासीलाल श्रीवास्तव

विनय-पत्रिका की भूमिका

(गताङ्क से आगे)

—❀—

इस प्रकार अनेक स्पृहणीय एवम् लुभावने प्रसंग आते गये और हमें अपनी कवि बनने की नादानी अनुभव होने लगी। ऐसा कवि बनकर हमारा क्या काम सधा, जिसमें हम अपने राम से दूर बने रहे और मन में घुटन अनुभव करते रहे।

यही विनय-पत्रिका की राम कहानी है।

हमारे सखा हनुमान की बात चल रही है, तो आप उसकी सफलता का रहस्य भी देख लें। भगवान् के दर्शन के लिये हमारी उत्कट लालसा तो हो ही, किन्तु दर्शन करने के लिये हम स्वयं भी तो अपने आप में उपस्थित रहें। हम तो अनेक रूप धारण कर अपने आप से कोसों दूर हो गये हैं। चौबीस घण्टों में एक क्षण को भी तो लौटकर अपने आप में विराजमान नहीं हो पाते। हर समय यही भाव घेरे रहते हैं —"मैं अमुक हूँ, मेरा यह अधिकार है, मैं यह समाजसेवा कर रहा हूं, मैं यह राष्ट्रसेवा कर रहा हूं। मेरे बिना यह काम बिगड़ जायेगा, वह काम अधूरा रह जायगा।" यह 'मैं' का मायावी रूप हमारे अपने स्वरूप को ढके रहता है। हमें अपने स्वरूप की अनुभूति नहीं होने देता। भगवान् तो हर क्षण हमारे साथ हैं। हम तो अपने साथ हों, अपने आप में विराजमान हों, तो अनुभव हो। हम अपने को अनेक रूपों में आबद्ध और गृहीत देखते हैं। इसलिये और कोई दूसरा हमें दिखलाई ही नहीं देता, भगवान् के दिखलाई देने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। इस प्रकार हमारी अपनी

स्थिति और हमारे सखा हनुमान की स्थिति में बड़ा अन्तर उठता है । वह अपने रूप में समाहित शुद्ध हनुमान हैं, हनुमान नहीं । हनुमान नाम की कोई वस्तु है ही नहीं; वह इसी रूप में हमारा आराध्य बना । हमने उसको इसीलिये हनू कहना ही उचित समझा :—

उभय भाँति तेहि आनहु,
　　हँसि कह कृपानिकेत ।
जय कृपाल कहि कपि चले,
　　अंगद हनू समेत ।।

(मा ५.४४)

स्वयं भगवान् ने इस तथ्य को महत्त्व देते हुए निर्मल मन के लिये आग्रह किया है —

निर्मल मन जन सो मोहि पावा ।
मोहि कपट छलछिद्र न भावा ।।

५.४३.५

हमारा सखा भी यों एक वार अपने जीवन में भगवान् के समक्ष इस कपट-छलछिद्र के चक्कर में पड़ गया था. किन्तु यह था केवल एक बार के लिए, जीवन में केवल एक क्षण के लिए । जैसे ही उसने अपनी भूल अनुभव की, वह तुरन्त सावधान हो गया और फिर जीवनपर्यंत कभी कोई ऐसा अवसर नहीं आने दिया । हमारा सारा जीवन ही इस कपट - छलछिद्र में व्यतीत हो रहा है । एक क्षण के लिए भी इससे मुक्ति नहीं है । यही हमारे सखा और हमारे जीवन का आकाश - पाताल का अंतर है और हमारे सखा की सफलता का रहस्य है । हम तो यही समझते रहे थे कि हमारे सखा पर भगवान् की अहेतुक कृपा है, किन्तु अब हमारी समझ में आया कि हनू-जैसे निर्मल-मन-जन है ही कहाँ ? उस-जैसे जन के लिए तो भगवान् सदा सुलभ रहते ही हैं ।

संदर्भगत प्रसंग पर आयें । ऋष्यमूक पर्वत पर सुग्रीव अपने सचिव हनुमान के साथ निवास कर रहे हैं । बालि से डरते रहते हैं । उन्हें सदा शंका बनी रहती है । इधर भगवान् राम लक्ष्मण - सहित सीता की खोज करते हुए उधर आ निकलते हैं । सुग्रीव का शंकालु मन भयभीत हो उठता है । वह सोचता है कि ये बालि के भेजे उसे मारने के लिये आ रहे हैं ।

सुग्रीव हनुमान को "धरि बटु रूप देखु तैं जाई" का आदेश देते हैं, और भेद लेकर वस्तु-स्थिति से अवगत कराने के लिए कहते हैं। हमारा सखा सुग्रीव-जैसे शंकाशील, छलछिद्र-कपटपूर्ण स्वामी का सेवक था। सुग्रीव के आदेश पालन में एक पग और आगे बढ़ गया।

सुग्रीव ने बटु रूप धारण कर भेद लेने के लिये कहा था। हमारे सखा का कपटी मन और आगे बढ़ा। सोचने लगा, हो सकता है बटु रूप धारण करने से क्षत्रियरूप-धारी वीरों का भेद न मिले, अथवा उपेक्षा हो जाय, तो वह बिप्र रूप धारण करके जाने का निश्चय करता है। "बिप्र रूप धरि कपि तहँ गयऊ।" विप्ररूप की उपेक्षा क्षत्रिय कर ही नहीं सकते।

भगवान् ने यह कपटावरण देखा और मर्म पर चोट करते हुए मूल की ओर संकेत किया। हनुमान को दो बार विप्र संबोधन करने के पीछे यही व्यंग्य छिपा था :—

इहाँ हरी निसिचर बैदेही।
बिप्र फिरहिं हम खोजत तेही॥
आपन चरित कहा हम गाई।
कहहु बिप्र निज कथा बुझाई॥

(मा ४.१.३, ४)

यह संकेत अलम् था। हनुमान ने तुरन्त अपने भगवान् को पहचान लिया और चरण पकड़कर रह गया। मन-वचन-कर्म से निर्मल होकर अपने रूप में प्रकट होते ही भगवान् ने अपना लिया :-

अस कहि परेउ चरन अकुलाई।
निज तनु प्रगटि प्रीति उर छाई॥
तब रघुपति उठाइ उर लावा।
निज लोचन जल सींचि जुड़ावा॥

अपने आराध्य के प्रति मन-वचन-कर्म से प्रकट प्रपत्ति ही प्रभु शरणागति का रहस्य है। उपर्युक्त अर्द्धाली में "अस कहि" से वचन, 'परेउ चरन अकुलाई" से कर्म तथा "प्रीति उर छाई"

से मन की प्रपत्ति प्रकट हुई और "निज तनु प्रगटि"१ के अंतर्गत सर्वभावेन समर्पण होने के साथ "कपट छलछिद्र" का त्याग हो

१—रामकाज पूरा करते हुए हनुमान को अनेक रूप धारण करने पड़े थे, किन्तु उस महान् उद्देश्य के लिए ये अनेक रूप-धारण "कपट-छलछिद्र" की सीमा में नहीं आते। यह बात यहाँ भली भाँति समझ लेना आवश्यक है। विभीषण-मिलन प्रसंग में भी "बिप्ररूप धरि" की बात कही गई है, किन्तु वहाँ "निज तनु प्रगटि" की आवश्यकता नहीं हुई है। दूसरे शब्दों में कहें तो यह रूप - धारत्र वेश से या वेश तक सम्बन्धित था, तनु से सम्बन्धित नहीं था। अन्यान्य प्रसंगों में जहाँ तनु से सम्बन्धित रूप-धारण की बात आई है, वहाँ तनु के आकार का वर्णन है, प्रकार का नहीं। "तनु दुगुन बिस्तारा", "तासु दून कपि रूप", "अति लघु रूप", "मसक समानरूप" आदि-आदि। तनु प्रकार का प्रसंग जैसा कि अभी कहा जा चुका है, केवल एक बार आया है तथा उस अवसर पर "निज तनु प्रगटि" की आवश्यकता हुई है। तनु प्रकार की स्थिति रामकाज एवम् रामस्मरण की स्थिति है"—रामकाज लगि तव अवतारा। सुनतहिं भयउ पर्वताकारा॥ (मा ४.२९.६)

पूर्व प्रसंग में "बिप्ररूप" को भगवान् राम भी "बिप्र" मान चुके हैं, किन्तु विभीषण-मिलन प्रकरण में "विप्ररूप" को विभीषण बिप्र न मानकर हनुमान को पहचानने में भूल नहीं करते। उन्हें मात्रबिप्र समझ कर ही नहीं रह जाते, प्रत्युत उस वेशगत रूप के अन्तस् में पैठकर सहज एवम् वास्तविक रूप को पहचान लेते हैं: –

"की तुम्ह हरि दासन्ह महँ कोई। मोरें हृदय प्रीति अति होई।
की तुम्ह रामदीन अनुरागी। आयहु मोहि करन बड़ भागी॥

(मा ५.५.७,८)

बिप रूप धरि बचन सुनाए। सुनत विभीषन उठि तहँ आए। ५.५.५
करि प्रनाम पूँछी कुसलाई। बिप्र कहहु निज कथा बुझाई॥ ५.५.६
तब हनुमन्त कही सब, रामकथा निज नाम।
सुनत जुगल तन पुलक मन, मगन सुमिरि गुनग्राम॥५.६

गया एवम् अपने सहज रूप में प्रभु समक्ष उपस्थिति सम्भव हो गई। इस प्रकार भक्त के ऐसे मनभावन और प्यारे रूप के उद्घाटन होता है कि जिसे भगवान् को उठाकर अपने हृदय से लगाते ही बनता है। भगवान् इस सहज स्वरूप पर मुग्ध ही नहीं होते, प्रत्युत स्वयं भी उस रूप के दर्शन कर आत्मविभोर हो जाते हैं। "निज लोचन जल सींचि जुड़ावा" से उनके द्रवीभूत मन की सहज अभिव्यक्ति होती है। यदि आत्मा और परमात्मा के वियोग एवम् विरह की बात कहें, जैसा कि कुछ लोग सोचा करते हैं, तो यह विरही परमात्मा का वियुक्त आत्मा से मिलन का अवसर होता है, जिसके लिये परमात्मा विकल एवम् उद्विग्न बना रहता है और आत्मा का मिलन प्राप्त कर गद्गद् हो जाता है।

विभीषण को हनुमान के रूप में स्वयं "रामदीन अनुरागी" का रूप भासित होने लगा था। इसका कारण हनुमान की अनन्यता एवम् प्रभु का प्रति क्षण सान्निध्य था। हनुमान के मानस में रामरूप के अतिरिक्त कोई और रूप ही न था। इस कारण मानस-श्रद्धागत रूप की अभिव्यक्ति उसके व्यक्त रूप में होना स्वाभाविक थी। यह तद्रुपता की स्थिति अनन्य प्रेम से जहाँ सहज सम्भव हो जाती है, वहाँ अन्यथा ज्ञान और तर्क के अन्तर्गत बोधगम्य भी नहीं हो पाती। हनुमान की मानस-स्थिति माश्री मातासीता जी की अनन्यता के समकक्ष पहुँच चुकी थी तथा जिस प्रकार माश्री "पियहिय की सिय जानन-हारी" (२.१०१.३) थीं, उसी प्रकार हनुमान युगल-सरकार के हिय की जाननेवाला बन गया था। यही कारण था कि हनुमान को युगल सरकार का सारा आंतरिक जीवन उद्घाटित था। अशोकवाटिका में सीता माता के समक्ष अपनी सच्चाई प्रमाणित करते हुए वह जिस सम्बोधन की ओर संकेत करते हैं, वह सम्बोधन बड़ा गोपनीय था। उस सम्बोधन के द्वारा माश्री भगवान् राम को सम्बोधित किया करती थीं। यह रहस्यपूर्ण सम्बोधन हनुमान के रामचरितमानस के लिये गोपनीय नहीं रह सकता था। इस

सम्बोधन की शपथ खाकर ही वह अपनी सच्चाई प्रकट करते हैं—

राम दूत मैं मातु जानकी।
सत्य सपथ करुनानिधान की ।।

(मा ५.१२.६)

माश्री को यह सम्बोधन स्वयं पार्वती जी के आशीर्वाद में प्राप्त था। पुष्पवाटिका में जिस समय यह आशीर्वाद माश्री को प्राप्त हुआ था, उस समय भगवान् राम नें भी दूर से सुन[1] लिया था और इसके लिये उनकी भी सहमति थी। इस प्रकार यह सम्बोधन परम अनन्यता के प्रसङ्गों के लिये सुरक्षित हो गया था :—[2]

मनु जाहि राचेउ मिलिहि
सो बरु सहज सुन्दर साँवरो।
करुनानिधान सुजान सीलु
सनेह जानत रावरो ।।
एहि भाँति गौरि असीस सुनि
सिय सहित हियँ हरषी अली।

१. जनकसुता जगजननि जानकी।
अतिसय प्रिय करुनानिधानकी ।। १।१७।७

एक बानि करुनानिधान की।
सो प्रिय जाके गति न आन की ।। ३।६।८

२. पतिव्रत की यह मनसा - स्थिति भारतीय ललना के लिए चुनौती बन गई है। पतिव्रत धारण करना इसी रूप में आध्यात्मिक साधना है और इसी रूप में पत्नी को पति के अतिरिक्त किसी देवी-देवता की स्तुति, पूजा आदि करने की आवश्यकता नहीं है। पति परमेश्वर का यही स्वरूप है। यह सारा दायित्व, किन्तु पत्नी का ही होना है। वह अपनी अनन्यता एवम् अतिशय प्रेम के द्वारा अपने प्रियतम के मानस की जानने वाली बन जाती है तथा इस स्थिति को प्राप्त कर वह अपने पति को परमेश्वर बना लेती है। यह भक्त की ही साधना होती है कि वह 'पाहन ते परमेसुर काढ़े" वाली उक्ति को चरितार्थ करे। भगवान् तो प्रस्तरमूर्ति हैं। उनमें अपने हृदय के रस का प्लावन करना होता है। तभी वह भागवान् बन जाते हैं, पति परमेश्वर बन जाता है।

तुलसी भवानिहि पूजि
पुनि-पुनि मुदित मन मन्दिर चली ।।

(मा १.२३५ छं)

हनुमान की विश्वासपात्रता की पूर्वपीठिका सीता-खोज-प्रसंग में देखी जा सकती है। सभी बंदर सीता-खोज के लिये निकल पड़ते हैं। अन्त में हनुमान जी भगवान् राम के श्री-चरणों में नतमस्तक होने के लिये उपस्थित होते हैं। उस समय भगवान् हनुमान को अपने पास बुला लेते हैं, उनके सिर पर हाथ रखते हैं और 'जन' जानकर हाथ की मुद्रिका दे देते हैं। अवलोकनीय है—

पीछें पवनतनय सिरु नावा ।
जानि काज प्रभु निकट बुलावा ।।
परसा सीस सरोरुह पानी ।
कर मुद्रिका दीन्हि जन जानी ।।

(मा ४.२२.,९,१०)

भगवान् ने आगे समझाया—

बहु प्रकार सीतहि समुझाएहु ।
कहि बलबिरह बेगि तुम्ह आएहु ।

(४.२२. ११)

भगवान् की विश्वासपात्रता का इससे अधिक और क्या प्रमाण होगा कि भगवान् को "बल" के साथ जिसका चाहे जो कोई निवेदन कर सकता था, "विरह"-निवेदन का भी आदेश देते हैं। इस प्रकार हनुमान को रामकाज के साथ इतनी आत्मीयता और इतना विश्वास मिला कि वह अपने सौभाग्य पर स्वयं चकित रह गया। उसका जन्म निश्चय ही सफल हो गया। रामकाज और उससे भी अधिक रामकाज की पात्रता दोनों ही उसके लिये सुलभ हुई। उसकी साधना का रहस्य ही यह था कि उसे दिनरात, चौबीसो घण्टे अपने भगवान् का ध्यान बना रहता था। वह अपने कृपानिधान को सदा अपने हृदय में धारण किये रहता था :—

हनुमत जन्म सुफल करि माना ।
चलेउ हृदय धरि कृपानिधाना ।।

(मा ४.२२.१२)

माश्री भी उसको यही आशीर्वाद देती हैं—"करेहु सदा रघुनायक छोहू।" किन्तु इस आशीर्वाद के निर्वाह का दायित्व भी तो माश्री पर ही था। वह भगवान्

राम को सदा हनुमान का स्मरण दिलाया करती थीं। फलस्वरूप उनका अमोघ आशीर्वाद सदा सफल होता रहता था और भगवान् सदा उस पर छोह करते थे। हमने माश्री से इसी संदर्भ को स्मरण कर कभी अवसर निकाल कर करुणानिधान को हमारी याद दिलाने के लिये प्रार्थना की थी:—

"कबहुँक अम्ब अवसर पाइ
मेरियो सुधि द्याइबी।"

मानस के सभी पात्र किसी-न-किसी रूप में भगवान् की कृपा के अधिकारी बने हैं और इस प्रकार विनय के लिये प्रेरणास्रोत हो सकते हैं; किन्तु हमारी सबसे अधिक निकटता हनुमान से रही है। वह हमारा सखा, हमारा शुभेच्छु, हमारा आराध्य, हमारा सब कुछ रहा है। इस कारण हनुमान के चरित पर हमारी विशेष दृष्टि रही तथा उससे हमें विनय के लिये विशेष प्रेरणा मिली। परम भागवत् रामरूप भरत सरकार तो साक्षात् विनयशीलता के अवतार हैं तथा उनके पावन चरित का भी कम प्रभाव नहीं पड़ा है। किन्तु भगवान् राम की भाँति उनसे भी हमारा प्रत्यक्ष सम्पर्क सम्भव नहीं हो पाया है। इसलिये हनुमान के चरित से स्पर्धा करन का प्रश्न नहीं उठा है, न हमारा साहस ही, हो सका है, जो निश्चय ही हमारी धृष्टता होती। हम हनुमान की वंदना करते हैं:—

प्रनवउँ पवनकुमार
खलगन पावक ग्यानधन।
जासु हृदयँ आगार
बसहिं रामसर चापधर॥

(क्रमशः)

डा० ब्रजवासीलाल श्रीवास्तव

विनय-पत्रिका की भूमिका

(गताङ्क से आगे)

—❀—

हनुमान के चरित से विनय की प्रेरणा प्राप्त करने के साथ स्वयं भगवान् राम के शील-सौन्दर्य का हमारे मानस पर मादक (इस शब्द के प्रयोग के लिए क्षमा करें) प्रभाव पड़ा है । आँखों का कार्य ही सुन्दर वस्तु देखना है और जब भगवान् राम के स्वरूप में परम सौन्दर्य के दर्शन हों तो इन आँखों की, इस हृदय की दशा ही क्या होगी ? हमारे हृदय की इस ललक एवम् लालसा का अनुभव द्वारा ही अनुमान लगाया जा सकता है । सुन्दर मूर्ति को देखकर मानस ऐसा अभिभूत हो जाता है कि और कुछ चित्त पर चढ़ता ही नहीं है । बस, एक लगन लग जाती है, मनभावन सुन्दर शील सुजान को देखते ही रहें । किसी बहाने उनसे कुछ कहने का अवसर मिले । कुछ विनय करें । वह तनिक मुस्करा दें और उस अपूर्व छटा के दर्शन कर रोम-रोम पुलकित हो जाय । हो सकता है कि सांसारिक अभाव और यातनाओं से विकल होकर[1] जीव प्रभु की ओर उन्मुख हो और विनय के लिए

1. Even monied man have critical periods in their lives, though they are surrounded by every thing that money can buy and affection can give, they find at certain moments in their lives utterly distracted. It is in these moments that we have a glimpse of God, a vision of Him who is guiding everyone of our steps in life. It is prayer.

(Harijan:Eng.weekly 19.8.39.)

विवश हो, किन्तु उन परम मन-भावन के समक्ष पहुँच कर उनके जादू-भरे दर्शन करके वह मुग्ध होकर रह जायगा, उससे कुछ कहते ही नहीं बनेगा। वह अपनी सारी व्यथा भूल जायगा। बस एकटक दर्शन ही करता रह जायगा।

बस एक ही कामना मन में उठती है कि ऐसा सुन्दर रूप सदा हमारे मन में बसा रहे और वास्तविकता यह है कि वह सुन्दर रूप मन में ऐसा बस जाता है कि दिन-रात वही गोचर होता है। सीयाराममयसब जग दिखलाई देने लगे तो स्वाभाविक ही है। जितनी रुचि और लगन होती है, उतनी ही आशंका होती है। तो यह अशंका ही प्राथना और विनय का रूप धारण कर लेती है. आशंका यही होती है कि किसी प्रकार कहीं यह सुन्दर रूप मन से निकल न जाय। यह आशंकाजनित मन की विकलता प्रेमी हृदय का सर्वस्व एवम् सौभाग्य है। कब परम मन-भावन के सुन्दर दर्शन सुलभ होंगे, यह आशा भी कम मादक नहीं होती। प्रत्युत साक्षात् दर्शन से कहीं अधिक मनमोहक होती है। तो आइये यह दृश्य भी देख लीजिये जिससे हमारी बात स्पष्ट हो जाय—

प्रभु आगवनु श्रवन सुनि धावा।
करत मनोरथ आतुर धावा॥
(मा ३.९.३)

हे विधि दीनबन्धु रघुनाथा।
मो से सठ पर करिहहिं दाया॥
३.९.४

होइहैं सुफल आजु मम लोचन।
देखि बदन पंकज भवमोचन॥
३.९.९

निर्भर प्रेम मगन मुनि ग्यानी।
कहि न जाइ सो दसा भवानी॥
३.९.१०

दिसि अरु बिदिसि पंथ नहिं सूझा।
को मैं चलेउँ कहाँ नहिं बूझा॥
३.९.११

कबहुँक फिरि पाछे पुनि जाई।
कबहुँक नृत्य करहिं गुन गाई॥
३.९.१२

अबिरल प्रेम भगति मुनि पाई।
प्रभु देखैं तरु ओट लुकाई॥
३.९.१३

रामु बदनु बिलोकि मुनि ठाढ़ा।
मानहुँ चित्र माझ लिखि काढ़ा॥
३.९.२४

जो कोसलपति राजिवनयना।
करउ सो राम हृदय मम अयना॥
३.१०.२०

जन-सामान्य की दशा भी उपर्युक्त दशा से भिन्न नहीं हैं। वह भी परम सुन्दर पाहुने के दर्शन कर आत्मविभोर हो जाते हैं और एकटक देखते रह जाते हैं।१ यह दृश्य भी अति कमनीय है, अवलोकनीय है—

सीता लखन सहित रघुराई ।
गाँव निकट जब निकसहिं जाई ।।
(मा २.११३.१)

सुनि सब बालवृद्ध नर नारी ।
चलहिं तुरत गृहकाजु बिसारी ।।
.२

राम लखन सिय रूप निहारी ।
पाइ नयनफलु होहिं सुखारी ।।
.३

सजल बिलोचन पुलक सरीरा ।
सब भए मगन देखि रघुबीरा ।।
.४

बरनि न जाइ दसा तिन्ह केरी ।
लहि जनु रंकन्ह सुरमनि ढेरी ।।
.५

एकन्ह एक बोलि सिख देहीं ।
लोचन लाहु लेहु छय एही ।।
.६

रामहिं देखि एक अनुरागे ।
चितवत चले जाहिं संग लागे ।।
.७

एक नयन मग छबि उर आनी ।
होहिं सिथिल तनमन बर बानी ।।
.८

एक देखि बट छाँह भलि,
डासि मृदुल तृन पात ।
कहहिं गवाँइअ छिनुकु श्रमु,
गवनव अबहिं कि प्रात ।।
(मा २.११४)

एक कलस भरि आनहिं पानी ।
अँचइअ नाथ कहहिं मृदु बानी ।।
२.११४.१

मुदित नारिनर देखहिं सोभा ।
रूप अनूप नयन मनु लोभा ।
.३

एकटक सब सोंहहिं चहुँ ओरा ।
रामचन्द्र मुखचद चकोरा ।।
.४

---

१. जो तुम आ जाते एक बार ।

कितनी करुणा, कितने संदेश पथ में बिछ जाते बन पराग ।
गाता प्राणों का तार-तार अनुराग भरा उन्माद राग ।।
आँसू लेते ये पद पखार — महादेवी वर्मा

रामलखन सिय सुन्दरताई ।
सब चितवहिं चितमन मति लाई ।।
(मा २.११५.१

थके नारिनर प्रेम पिआसे ।
मनहुं मृगी मृग देखि दिआसे ।।
.३

वह जादू ही क्या जो सिर चढ़कर न बोले । सौन्दर्य के सम्बन्ध में यह उक्ति सोलह आने सही बैठती है । राक्षसवर्ग, जो भगवान् से शत्रुता मानता था, भगवान् के सौन्दर्य को देखकर मुग्ध हो गया था । खरदूषन ने अपने जीवन की सारी सौन्दर्य-साक्षात्कार की घटनाओं को स्मरण किया, उनका लेखा लिया किन्तु वह भी इसी निष्कर्ष पर पहुंचा कि ऐसी सुन्दरता जीवन में कभी नहीं देखी है । अतएव यद्यपि बहिन को कुरूप किया है, फिर भी ऐसी सुन्दर मूर्ति वध नहीं की जानी चाहिए । राक्षसों की मुक्ति की जहां चर्चा आई है और उनको सहज ही यह सुलाभ प्राप्त हुआ है, वहाँ सारी सफलता का रहस्य यही प्रेमासक्ति है, जिसका आधार सौन्दर्यबोध एवम् सौन्दर्य-साक्षात्कार है । तन्मयता का ही दूसरा नाम मुक्ति है और यह स्थिति सौन्दर्य-अभिभूत मनोदशा में सहज ही संभव हो जाती हैं । सचमुच ऐसे राक्षस धन्य हैं, जिनका मन सौन्दर्य के प्रति सहज ही अनुरक्त हो जाता है तथा वह सब कुछ भूलकर तन्मय स्थिति प्राप्त कर भगवान् के परम सौन्दर्य में अभिभूत एवम् आसक्त बने रहते हैं । मूल प्रसंग अवलोकनीय है —

प्रभु बिलोकि सर सकहिं न डारी ।
थकित भई रजनीचर धारी ।।
(मा ३.१८.१)

सचिव बोलि बोले खरदूषन ।
यह कोउ नृपबालक नर भूषन ।।२
नाग असुर सुर नर मुनि जेते ।
देखे जिते हते हम केते ।। ३
हम भरि जन्म सुनहु सब भाई ।
देखी नहिं असि सुन्दरताई ।।४
जद्यपि भगिनी कीन्हि कुरूपा ।
बधलायक नहिं पुरुष अनूपा ।।५
... ...

राम राम कहि तनु[१] तजहिं,
पावहिं पद निर्वान ।
करि उपाय रिपु मारे,
छन महुँ कृपानिधान ।

मा ३.२० (क)

यहाँ भगवान् के सौंदर्यपान एवम् गद्गद् होने की बात हमने बड़े साधारण ढङ्ग से कह दी है और ऐसा लगता है कि जैसे भगवद्-सौंदर्य के प्रति अनुराग में कोई कठिनाई ही नहीं होती, किन्तु वास्तविकता कुछ और ही है । वह परम सुन्दर हैं, उन्हें देखकर मन-मयूर नाचने लगेगा, रोम-रोम गद्गद् एवम् पुलकित हो जायगा, इसमें शंका नहीं है । किन्तु सबसे बडी कठिनाई यही है कि उनकी ओर हमारा मन उन्मुख तो हो ? हमारा मन इस संसारी माया-मोह में ही अटका रहता है । संसारी सुन्दर रूप का ऐसा प्रबल आकर्षण होता है कि फिर और तो और, भगवान् के सौंदर्य के प्रति भी शंका होने लगती है । संसारी रूप से अधिक सुन्दर और कोई रूप होगा, यह विचार ही हास्यास्पद लगा करता है । क्षमा करें । हमारी अपनी यह कमजोरी रही है । इसलिए हम अच्छी तरह जानते हैं कि संसारी रूप का कैसा जादू होता है और कितनी आसक्ति हो जाती है । हमारी पत्नी रत्नावली बहुत सुंदर थी । जितनी वह सुन्दर थी, उससे कहीं अधिक उसमें हमारी आसक्ति एवम् अनुरक्ति थी । उसके सौंदर्य में हम अपने आप को भूल गये थे । उसके मादक

---

१. राम-राम कहि तनु तजहिं-प्रस्तुत प्रकरण में एक महत्त्वपूर्ण तथ्य प्रकट हुआ है । राम नाम की महिमा और नामस्मरण की साधना इस प्रकार रामनाम लेने में है । रामनाम लेने से पूर्व मन राम के सौन्दर्य में अभिभूत हो और उस सौन्दर्य की मनमोहक छटा मन में बस गई हो । उस समय स्मरण किया गया रामनाम कोरा नाम स्मरण नहीं होता, प्रत्युत तन्मयता की भावभूमि में पल्लवित स्वतःस्फूर्त रामनाम का ध्वनिस्फोट होता है । विनय-पत्रिका में रामरटु रामरटु का प्रसंग भगवान् राम के सौंदर्यबोध के पश्चात् प्रस्तुत किया गया है । वहाँ भी नामस्मरण के पीछे इसी भावभूमि की अपेक्षा रही है ।

सौंदर्य का ऐसा जादू हमारे सिर पर संवार था कि एक क्षण के लिए भी उसका वियोगहमारे लिए असह्य था। बस, दिन-रात यही लगन लगी रहती थी कि उसके पास बने रहें, उसे देखते रहें, उससे कुछ बात करते रहें, वह मुस्कराये और हम बलि-बलि जाते रहें। वह जितनी लज्जा करती, उतनी और अच्छी लगती और दिनों-दिन मन पर चढ़ती जाती। उन दिनों हमें न दीन से मतलब था, न दुनिया से। हमारा दीन, हमारी दुनिया हमारी रत्ना थी। हमारा मन, मन की सारी आशा-आकांक्षाएं, कल्पना की सारी उड़ानें रत्नावली के सौंदर्य में अटक कर रह गई थीं। बस, दिन-रात उसी का ध्यान बना रहता था, वही दिखलाई देती थी। हमारी देवी, हमारे प्राणों की प्राण, हमारे हृदय का संगीत, हमारी वाणी की मुखरता, सब कुछ हमारी रत्ना थी। आज हमें अपनी उस दशा पर हँसी आती है, किन्तु उन दिनों हमें कुछ नहीं सूझता था। हमारा सारा विवेक, हमारा सारा बुद्धि-विलास, सारा तर्क-बितर्क लुप्त हो गया था। रत्ना की सुन्दर छबि में खोये हम कल्पना की उड़ान भरा करते हैं। हँसी आने की भी एक खास बात है। कहाँ तो मन और नेत्रों की यह उत्कट लालसा कि सुन्दर रूप के दर्शन हों और कहाँ सांसारिक सौंदर्य की लघु छटा में ही मन अटक कर रह गया। कभी मन में यह भाव ही नहीं आया कि रत्ना इतनी सुन्दर है, तो रत्ना का स्रष्टा कितना सुन्दर होगा? यों हम किसी सुन्दर चित्र को देखें या किसी सुन्दर मूर्ति या प्रतिमा को देखें, तो अनायास ही हमारा ध्यान उसके निर्माता की ओर जाता है और हमारी प्रतिक्रिया होती है कि कितना सुंदर बनाया है? कैसा सुंदर गढ़ा है? तात्पर्य यह कि बनानेवाले की ओर हमारा ध्यान जाता है और उसकी हम प्रशंसा करते हैं। यही नहीं, उससे मिलने, उससे भेंट करने के लिए उत्सुक एवम् आतुर भी रहा करते हैं। किन्तु इस रूप-साक्षात्कार के संदर्भ में हमारा दुर्भाग्य देखिये कि कभी यह भाव ही मन में नहीं आता कि इस सुंदर रूप-का स्रष्टा कितना सुंदर होगा। उस परम सौंदर्य के दर्शन करें,

उसके लिये लालायित हों।

हम अपनी धर्मपत्नी (यहाँ धर्म पद का हमने जानबूझकर प्रयोग किया है) के प्रति हार्दिक आभार प्रकट करते हैं। उसने अपने सौंदर्य के द्वारा हमें धर्म का दिग्दर्शन कराया। उस परम सौंदर्य की ओर उसने हमारा ध्यान ही नहीं आकृष्ट किया प्रत्युत उसके साक्षात् दर्शन कराये, सच्चे सौंदर्य की प्रतीति कराई और हमारे सारे चिन्तन एवम् विचार-विवेक को एक मोड़ दे दिया। उसने हमें असंदिग्ध शब्दों में स्पष्ट किया कि हम उसके अस्थिचर्ममय देह से आगे इस संसारी रूप-सौंदर्य के स्रष्टा परम सुंदर भगवान् के दर्शन कर कृतार्थ हों। इस कार्य को कोई और नहीं कर सकता था। जिस ढग से उसने अपना सर्वस्व बलिदान करके हमें उपदेश दिया, उस प्रकार और कोई कैसे हमारा मार्ग-दर्शन करा सकता था। रामकथा के संदर्भ प्रस्तुत करते हुए यदि कल्पना करें कि भगवान् राम राक्षस-विनाश के लिए सीता को अग्नि-में स्थापित न करते, प्रत्युत स्वयं सीता अपने परम आराध्य से इस परम उद्देश्य के लिए वियोग प्रस्तावित करती और असह्य वियोग की तड़पन स्वीकार करती, तो कथा का कितना करुण और मर्म-स्पर्शी पक्ष उभर कर आता? हमें पूर्ण विश्वास है कि हमारी रत्ना ने हमें पहचानने में कभी भूल नहीं की थी। इसलिये जब उसने हमारी आँखें खोलने के लिए एक संकल्प किया, तो अपना दारुण अंधकारमय भविष्य वरण कर लेने की विवशता से भी आँखें बन्द नहीं कर रखी थी। वह भली भांति जानती थी कि उसका उपदेश हमारे जीवन को मोड़कर रामकथा के प्रचार-प्रसार के लिए वरदान बन जायगा और हमें निश्चय ही इस संसारी माया-मोह से मुक्ति मिल जायगी, किन्तु वह भी भली-भाँति जानती थी कि हमारा यह सारा माया-मोह उसी के लिए था। इसलिए उसने यह भी समझ लिया था कि इस घटना के पश्चात् उसका अपने पति से, जो उसका अनन्य प्रेमी हो, उसका परम भक्त और पुजारी हो, सम्पर्क टूट जायगा और उसको अपना सारा जीवन वियोग की दारुण व्यथा में व्यतीत करना पड़ेगा। उसकी अंतस् की पीड़ा का स्मरण कर हमारा हृदय भर

आता है। वह हमारा कुशल-क्षेम, हमारी उपलब्धि, हमारा सदाचार और हमारी प्रशंसा सुनती और मन में जहाँ पुलकित और गद्गद् होती थी, वहाँ करुणा से बिलख-बिलख कर भी रह जाती थी। इस संसार के कल्याण के लिए उसने हमें भेंट कर दिये।१ संसार का हर एक प्राणी हमारे संपर्क में आने का अधिकारी बना, हमारी रामकथा सुनकर गद्गद् हुआ, किन्तु हम पर जिसका सारा अधिकार था, उस रत्ना को हमसे दूर ही रहने का वरदान मिला। वह भव्य सौंध की नींव का पत्थर बनकर अंतर्धान हो गई। वह एक लघु चिनगारी के रूप में अपना अस्तित्व मिटाकर अग्नि को प्रज्वलित कर शांत हो गई। वह हिना की भाँति पत्थर पर पिसकर रंग लाकर रह गई। उसके वे चिरन्तन शब्द हमारे कानों में सदा गूँजते रहे, जिन शब्दों की आंतरिक प्रेरणा और वेदना ने हमें घरबार छोड़कर उस परम सौंदर्य की खोज में निकलने के लिए विवश कर दिया—

अस्थिचर्ममय देह मम,
तामें ऐसी प्रीति।
जो कहुँ होती राम में,
होति न तौ भवभीति॥

धन्य हो रत्ना तुम। और धन्य है तुम्हारा त्याग और तुम्हारी तपस्या। संसार हमें पूजे, हमारी प्रशंसा करे, हमें सम्मान-समादर दे, किन्तु किसी को क्या पता कि हम किस हविष के प्रसाद हैं, किस बलिदान की नींव पर हमारी आराधना और साधना का सौंध खड़ा हुआ है, किसकी ममतामयी मौन रागिनी हमारी वाणी में गूँज रही है।

१. कमला नेहरू अस्पताल में विदेश में रुग्णशय्या पर थीं। उस समय भारत से केबिल आया, नेहरू जी को बुलाया गया था। नेहरू जी कुछ निश्चय नहीं कर पा रहे थे। उस समय कमला जी के प्रेरणाप्रद शब्द उनके जीवन के दुर्बल क्षणों के लिए सदा सम्बल सिद्ध हुए थे—"प्यारे जवाहर, तेरी माता स्वरूप रानी ने तुझे कमला के लिए नहीं, भारत माता के लिए पैदा किया है। यदि आज देश को तेरी आवश्यकता है, तो तुझ पर देश का पहला अधिकार है। तू भारत का है, कमला का अधिकार बाद का है।"

निश्चय ही इस सबके पीछे रत्ना, तुम्हारी मौन तपस्या है, बलिदानी साहस है, और जीवन्त प्रेरणा है।

इस देश की माटी का सौंदर्य अपने आप में कितना निराला है! इसका आधार शील होता है, अस्थिचर्ममय देह नहीं।२ रत्ना का सौंदर्य इसी दृष्टि से अमर है, आज भी आदर्श है और अनुकरणीय है। उसने अपने अस्थिचर्ममय सौंदर्य के स्थान पर शीलमय सौंदर्य की स्थापना की, जिसका पर्यवसान मानवमात्र के कल्याण में हुआ। यदि वह चाहती, तो हमें अपने रूप के माया-जाल में आजीवन उलझाये रहती, किन्तु उसने त्याग-तपस्या का बलिदानी उदाहरण प्रस्तुत कर सौंदर्य को शील से संपृक्त कर अमर कर दिया, लौकिक सौंदर्य को आध्यात्मिक जगत् का आधार बना दिया। रूप-सौंदर्य के स्थान पर परम आराध्य शीलसौंदर्य की स्थापना की, जहाँ भगवान् अपनी सहज मुद्रा में प्रसन्नवदन दृष्टिगोचर होते हैं और जीवमात्र दर्शन कर कृतार्थ हो जाता है।

---

१. सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वाम् सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि माशु चः॥

२. हाफिज सीराजी ने संसार में सौंदर्य की खोज की और सुन्दर से सुन्दर रूप को खोजने का प्रयत्न किया, किन्तु उसका मन आकर भारत में ही टिका, जब उसने देखा कि रूपसौंदर्य शील-संपृक्त है और त्याग-तपस्या उसका आधार है—

दरं मुहब्बत चूँ जने हिन्दी कसे मरदाना नेस्त।
सोख्तन बर शमए मुरदाकार हर परवाना नेस्त॥

मुहब्बत में हमने हिन्दुस्तान की औरतों से अधिक कोई मरदाना नहीं देखा। जलती हुई मोमबत्ती पर मरते हुए परवानों को हमने दुनिया में हर जगह देखा है; लेकिन हिन्दुस्तान में हमने बुझी हुई मोमबत्ती पर मरते हुए परवानों को देखा (सती का मृत पति के साथ चिता पर भस्म होना)।

भगवान् राम के सौंदर्य की कल्पना का स्वरूप इसीलिए मात्र सौंदर्यबोधक नहीं है, प्रत्युत उसका ठोस आधार उनका शील है, जो उनके सौंदर्य को परम प्रभावशील बनाकर तन्मयता की प्राप्ति करा देता है। उनका शील उनके प्रेम में दृष्टिगोचर होता है। वह अपने दास को कितना प्यार करते हैं, इसका अनुमान नहीं लगाया जा सकता है।[1] जैसा कि पहले कह आये हैं, वास्तविकता यही है कि भगवान् भक्त के लिये विकल रहा करते हैं। जैसे माँ अपने शिशु को पय-पान कराने के लिये विह्वल और विकल रहती है और शिशु खेल में रमा हुआ माँ तक आने की चिंता नहीं करता, उसी प्रकार भगवान् अपने भक्त को अपने हृदय से लगा लेने के लिए विकल रहा करते हैं। वह विवश होकर स्पष्ट कहा करते हैं—अरे, तू कहाँ पड़ा है। सब कुछ छोड़कर मेरी शरण में आजा और वह जीव सुनता ही नहीं। भगवान् को बताना पड़ता है कि मैं भगवान् हूँ और जीव को प्रतीति नहीं होती।

भगवान् के शील-सौंदर्य की कहानी रामकहानी है, रामकथा है। उनके शील-सौंदर्य पर यदि कोई मुग्ध न हो, तो हमें बड़ा आश्चर्य होगा, उसकी सौंदर्य-बोध की मानवीय क्षमता पर शंका होगी। मानव-मात्र उनके शील - सौंदर्य से प्रभावित हुए बिना रह नहीं सकता। एक चित्र हमने अंकित किया है। हमारी जिह्वा पर तो हर समय यही पद चढ़ा रहता है, बार-बार उसे गुनगुनाते रहना हमें अच्छा लगता है। एक बार आप को भी सुना दें —

सुन सीतापति-सील-सुभाउ ।
मोद न मन, तन पुलक,

---

१. समदासी मोहि कह सब कोऊ ।
सेवक प्रिय अनन्य मति सोऊ ॥४.२.८

नयन जल सो नर खेहर खाउ ।

.१

सिसुपन तें पितु, मातु, बंधु,
गुरु, सेवक, सचिव, सखाउ ।
कहत राम-विधु-बदन रिसोहैं,
सपनेहुँ लख्यो न काउ ।

.२

खेलत संग अनुज बालक नित,
जोगवत अनट अपाउ ।
जीति हारि चुचुकारि दुलारत,
देत दिवावत दाउ ।

.३

सिला साप-सताप-बिगत भइ,
परसत पावन पाउ ।
दई सुगति सो न हेरि हरष हिय,
चरन छुए को पछिताउ ।

४.

भवधनु भंजि निदरि भूपति,
भृगुनाथ खाइ गये ताउ ।
छमि अपराध, छमाइ पाँय
परि इतौ न अनत समाउ ।

.५

कह्यो राज, बन दियो नारिबस,
गरि गलानि गयो राउ ।
ता कुमातु को मन जोगवत ज्यों,
निज तन मरम कुघाउ ।

.६

कपि सेवा-बस भये कनौड़े,
कह्यो पवनसुत आउ ।
देबे को न कछू रिनियाँ हौं,
धनिक तू पत्र लिखाउ ।

.७

अपनाये सुग्रीव बिभीषन,
तिन न तज्यो छल-छाउ ।
भगत सभा सनमा निसराहत,
होत न हृदय अघाउ ।

.८

निज करुना करतूति भगत पर,
चपत चलत चरचाउ ।
सकृत प्रनाम प्रनत जस बरनत,
सुनत कहत फिरि गाउ ।

.९

समुझि-समुझि गुनग्राम राम के,
उर अनुराग बढ़ाउ ।

हमारी विनय को प्रेरणा का एक और पहलू "कलियुग की करालता से उत्पन्न व्याकुलता एवम् कातरता" तथा शारीरिक कष्टजन्य विकलता भी समझी

जा सकती है । किन्तु ऐसा समझना एक भ्रांति हीं होगी।१ हमने ऐसे प्रकरणों में या तो लोकविनय की अभिव्यक्ति की है अथवा अन्यत्र जहाँ "द्वार-द्वार पेट खलाते और डांट-फटकार खाते फिरते"-जैसे प्रकरण आये हैं, वहाँ उस दैन्य की स्थापना हमारा अभीष्ट रहा है, जिसके अन्तर्गत मानव का अहं विलीन होकर२ सर्वभावेन समर्पण संभव

१. विनय में कलि की करालता से उत्पन्न जिस व्याकुलता का उन्होंने वर्णन किया है, वह केवल उन्हीं की नहीं है, समस्त लोक की है.............. (पृ०६६)

कहा न कियो, कहाँ न गयो, सीस काहि न नायो ?
हा-हा करि दीनता कही,
द्वार-द्वार बार-बार, परि न छार मुँह बायो।
महिमा मानप्रिय प्रानतें तजि,
खोलि खलन आगे खिनु-खिनु पेट खलायो ।।

......सारी विनय-पत्रिका का विषय यही है—राम की बड़ाई और तुलसी की छोटाई । दैन्यभाव जिस उत्कर्ष को गोस्वामी जी में पहुँचा है, उस उत्कर्ष को और किसी भक्त कवि में नहीं । इस भाव-रहस्य से अनभिज्ञ और इस उपलक्षण-पद्धति को न समझन वाले ऊपर के पदों को देखकर यदि कहें कि तुलसीदास जी बड़े भारी मंगन थे, हटाने से जल्दी हटते नहीं थे, और खुशामदी भी बड़े भारी थे, तो उनका प्रतिवाद करना समय नष्ट करना ही है ।

पृ० ९५,९६ गोस्वामी तुलसीदास : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

2. you are not going to know the meaning of God or prayer, unless you reduce yourself to a cipher. You must be humble enough to see that inspite of your greatness and gigantniitelleet, you are bnt a speck in the universe.

(Harijan:Eng.weekly 19.8.39, M. Gandhi)